IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का लोक–दर्षन

डॉ0 विजय नारायन दूबे

श्री षिवा डिग्री कालेज, तेरही, कप्तानगंज, आजमगढ़

किसी भी प्रकार की रचना के पहले रचनाकार को पूर्वाग्रह छोड़ना आवष्यक हो जाता है क्योंकि बिना छोड़े मोह और आसक्ति से विरत होना उसके लिए कठिन होता है। कालिदास अनासक्त थे, अनासक्त की श्रेणियों में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर, सुमित्रानन्दन पन्त और हजारीप्रसाद द्विवेदी तीनों हैं। आचार्य द्विवेदी जी के निबन्धों में अन्तर्कथाओं का सम्मिश्रण और उन्हीं अन्तर्कथाओं का यह सुपरिणाम है कि उनके निबन्धों के रसास्वादन के लिए सांस्कृतिक भूमिका और साहित्यिक चेतना दोनों का होना परमावष्यक है। इनके निबन्धों में जो भी दृष्य विधान है उनके आलोड़न के लिए पाठक के हृदय में अनायास उत्सुकता बलवती हो जाती है। इसीलिए पाठक की अतृप्त मानवी भूख निबन्धों के अनुषीलन के लिए व्यग्र हो जाती है और निबन्ध विलोचन के अनन्तर बार–बार पढ़ने की इच्छा बलवती होती है। द्विवेदी जी एक ही बात को विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त कर अलग–अलग तरह की विषिष्ट अर्थवत्ता भर देते हैं। यद्यपि इनके निबन्धों में सन्दर्भों के साथ–साथ विषय वस्तुओं की आवृत्ति है, फिर भी उनमें विवेक सम्पन्नता है।

आचार्य द्विवेदी व्यक्तिव्यंजक निबन्धकार और यही कारण है कि इनके निबन्धों में विषयोन्मुखता की अपेक्षा आत्मोन्मुखता के साथ–साथ गीतात्मकता और स्वच्छन्दता अधिक है। उनके निबन्धों में स्वभाव की सादगी और भोजपुरी का पुट 'बसंत आ गया', 'एक कुत्ता एक मैना', 'षिरीष के फूल' आदि निबन्धों में प्रत्यक्ष है। आ. द्विवेदी एक ओर अतीत के ऐष्वर्यमूलक चिन्तन और दूसरी ओर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति विचार करते हैं– परिस्थितिजन्य कारणों की खोज करते हैं और अन्त में निष्कर्ष देते हैं। द्विवेदी जी साम्राज्यवाद के खिलाफ आवाज उठाते हैं, लेकिन उनके भीतर का विवेक उन्हें बराबर सावधान करता है। इसे ही वे पराजित मनोभाव कहते हैं। उनका कहना है कि आज का प्रत्येक कवि, प्रत्येक लेखक पराजित मन का षिकार है क्योंकि आज का वर्तमान अतीत जैसा मोहक नहीं है। गुप्तकाल में उज्जयिनी की सारिकाएँ अनेक प्रकार की गुदगुदियाँ उत्पन्न कर अन्ततः वैराग्य उद्रेकित करती थी लेकिन आज नगरों के वेष्यालय, देष के समस्त नैतिकता, समग्र काव्यकला, समग्र आचार्य परम्परा या यों कहें कि वर्तमान युग अपमानित, दलित, निरुपाय, कलंकित सधवाओं का देष है। द्विवेदी जी ऐसे जंजाल, ऐसे कूड़ा और ऐसी आवर्जना को दूर करने के लिए कहते हैं। वे धरती से नाता तोड़कर आँख मूँदकर आसमान की ओर नहीं देखते, क्योंकि अदृष्य लोक में विचरण करने वाले लोक को वे पराजित मनोभाव से पीड़ित बतलाते हैं। द्विवेदी जी का कथन है कि ''लोग कहते हैं कि इस जगत् की समस्त गन्दगियों से परे कोई ऐसा परात्पर ब्रह्म है जो साष्वत और त्रिकाल है, पर मैं कहता हूँ कि मनुष्य की मानसिक भूख ष्साष्वत ही है। मनुष्य की उद्दाम लालसा, पराजित बुभुक्षा और दुर्दमनीय जिजीविषा को चिरपुरातन और चिरनवीन कहने की इच्छा होती है। वैरागी कहता है, यह भूख तुम्हारा ष्षत्रु है, लेकिन कहने की इच्छा होती है, इस भूख में ही मनुष्यता है।'' छेष के दारिद्रय को देख कर वे कहते हैं, ''जबकि दिमाग खाली हो और दिल भारी हो तो षास्त्र चर्चा अच्छी नहीं लगती। गठीले बदन वाले नवयुवक हींग बेचने वाले व्यक्ति के कथन को सुनकर द्विवेदी जी चिन्तन मग्न हो जाते हैं क्योंकि इसका यह कहना, मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं तो क्या हिन्दू हैं। यही प्रष्न रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पठान ने किया था, इस पर द्विवेदी जी कहते हैं, इस अभागे देष में जो मुसलमान भी नहीं, ईसाई भी नहीं, वह हिन्दू होता है। यह पठान युवक पाणिनी और याज्ञवल्क्य का वंषज है, चूँकि वह मुसलमान है, इसलिए हिन्दू नहीं।

'चारूचन्द्रलेख' में एक उद्धरण है 'कुमार जीव के सगे सम्बन्धी आज सीमान्त की बहू–बेटियों का व्यवसाय करते हैं.. . फिर भी भरोसा यह है कि वह रक्त बचा तो है जो चित्त को नये बिना नहीं रह सकता। इस पर वे कहते हैं, फलेन परिचयते वृक्षः अर्थात्– वृक्ष की पहचान फल से होती है। आज जो हिन्दुओं कर दुर्व्यवस्था है वह है तो उसी विघोशित समृद्धिकालीन सभ्यता का परिणाम। कैसे कहूँ कि वह अच्छी थी जबकि उसका परिणाम बुरा नजर आ रहा है। इसी प्रकार 'ठाकुर जी की बटोर' निबन्ध में वे कहते हैं जो ठाकुर जाति विषेश की पूजा ग्रहण कर पवित्र रह सकते हैं, जो दूसरी जाति की पूजा ग्रहण करके अग्राह्य चरणोदक हो जाते हैं वे मेरी पूजा नहीं ग्रहण कर सकते हैं। मेरे भगवान् दीन पतितों के भगवान् हैं। जाति, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय से परे ऊपर के भगवान् हैं। वे सबकी पूजा ग्रहण कर सकते हैं और पूजा ग्रहण कर अब्राह्मण, चाण्डाल सबको पूज्य बना सकते हैं। उनका निबन्ध 'ठाकुर जी की बटोर' रवीन्द्र और गाँधी से प्रभावित है। इनके निबन्धों में दो अतिवादी प्रवृत्तियों का निषेध दिखायी पडता है– 1. जो पुरातन को एकदम बेकार समझते हैं, उनसे इनका समझौता नहीं हो सकता, क्योंकि उन्होंने परम्परा को छोड़ा नहीं है, बल्कि उसे नये आलोक में देखा है। आ. द्विवेदी के पूरे कृतित्व का चिन्तन पुरातनता पर आधारित है जिसमें नवीनता की प्रतिश्ठा है। उनकी दृष्टि में केवल ज्ञान भार है, यदि वह मुक्त की ओर नहीं ले जा सका। केवल ज्ञान भार स्वरूप होकर वाह्याचार मात्र है, मृत है, ज्ञान का फल मुक्ति है। यह मुक्ति ही भविश्य का निर्माण है। द्विवदी जी ने इसी प्रकार अनेक उपेक्षित पुस्तकों, पुरानी वस्तुओं को एक नई अर्थवत्ता प्रदान की है।

'अषोक के फूल' में वे कहते हैं, अषोक का फूल उसी मस्ती से हँस रहा है। पण्डिताई भी एक बोझ है– जितनी बीमारी होती है, उतनी तेजी से डुबाती है, जब जीवन का अंग बन जाती है तो वह न तो बोझ रहती है और न उदास कर पाती है। द्विवेदी जी साहित्य के नये मूल्यों को संकेत करते हुए कहते हैं– चित्तगत उन्मुक्तता बड़ी चीज है, क्योंकि वह सम्भावना से भरी है उसका स्वागत होना चाहिए। उसका स्वस्थ विकास हुआ तो भारतीय साहित्य का अच्छा अध्ययन होगा और तब हम भारतीय साहित्य को बचा सकेंगे।

'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में वे नाखून के बढ़ने को पुता की निषानी बताते हैं तथा नाखून न बढ़ने देना इसे मनुश्य की इच्छा और आदर्ष मानते हैं। जीवन में अस्त्र–षस्त्रों को बढ़ने देना पुता है तथा उसे रोकना मनुश्यत्व की जरूरत कहते हैं। मनुष्य में घृणा का जन्म पषुत्व है और खुद को संयत रखना व दूसरे का आदर करना मानव का स्वधर्म है। इस प्रकार 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' में द्विवेदी जी ने मनुश्य की इच्छा व उसके आदर्ष, उसके मनुश्यत्व और स्वधर्म की जहाँ एक ओर चर्चा की है वहीं नाखून के बढ़ने को पुत्व अस्त्र–षस्त्र की होड़ को पषुत्व और घृणा को पषुत्व माना है। द्विवेदी जी के निबन्धों की यह सबसे बड़ी विषेषता है कि षीर्षक कुछ निबन्ध कुछ, जैसे ष्है 'अषोक के फूल' और उद्देष्य है इतिहास के बड़े तथ्यों का उद्घाटन करना। ऐसे ही 'बसंत आ गया' जो एक निष्चित समय पर आता है, लेकिन द्विवेदी जी कहते हैं, बसंत आता नहीं ले आया जाता है। जो चाहे जब चाहे अपने पर ला सकता है। द्विवेदी जी की प्रतीति है बसंत भागता–भागता चलता है, देष में नहीं काल में किसी का बसंत पन्द्रह दिन और किसी का नौ महीने का। उनके निबन्धों में उनकी प्रकृति झाँकती है, उनकी भाषा में उनका वक्ता रूप बोलता है। अपने ग्रन्थों में ये व्यंग्य कर्ता के रूप में सामने आते हैं, लेकिन निबन्धों में इस श्रेणी का व्यंग्य कहीं नहीं दिखायी देता और जो दिखायी देता है वह एकदम षान्त।

आचार्य द्विवेदी के निबन्धों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है और पन्त के अधिक निकट है। उनके निबन्धों की दो षैलियाँ हैं– जहाँ संस्कृतनिश्भाषा और लम्बे–लम्बे वाक्यों का ये प्रयोग करते हैं, वहाँ बाणभट्ट, रवीन्द्रनाथ जैसे बड़े–बड़े मनीषियों का प्रभाव इन पर दिखायी देता है और जहाँ वे एकाध वाक्य में ही अपनी बात को समाप्त कर देते हैं, वहाँ वे अपनी पूर्व धारणा में थोड़ा संषोधन कर एक या दो वाक्य में ही अपना वक्तव्य को खत्म कर देते हैं। देवदारू के जंगल में बैठकर लाख–लाख मुड़कट्टों, भूतों–प्रेतों की बात वे करते हैं, वहाँ इनका संकेत डिग्री कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में सज–धज करने वाले अध्यापकों से है ही, साथ ही विधानसभा, लोकसभा, न्यायालय, उच्च न्यायालय, नेता, अभिनेता सबसे है। देष मुड़कट्टों की मार का षिकार हो गया है। भयंकर भ्रांति है, बौद्धिक जड़ता है। रोज–ब–रोज मुड़कट्टों की संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि देवदारू के लकड़ी से चोट करने वाले चरित्र उठ गये हैं या भूत भगावन क्रिया से लोगों ने किनारा कस लिया है। स्पष्ट है कि उनकी कथाओं में अन्तर्कथाएँ ही नहीं, बल्कि अन्तःगूढ़ता है। 'देवदारू' की अन्तिम पंक्तियाँ बड़ी ही जोरदार है– 'देवदारू के बारम्बार कम्पित होते रहने में एक बार की मस्ती अवष्य है, युग युगान्तर के अनुभूति में संचित रहने में मानों मस्ती प्रदान की है... लेकिन देवदारू है नीचे उतरा ही नहीं, समझौते के रास्ते ही नहीं गया और उसने अपनी खानदानी चाल नहीं छोड़ी, जिसका संकेत है आज देष के नेता, कलाकार, पण्डितगण, सबने अपनी जमीन छोड़कर दरबारी गन्धियों से समझौता कर लिया।

कुछ ने तो खानदानी चाल छोड़ दी और कुछ ने नयी चाल का अभ्यास किया। ये सब व्यंग्यमूलक चोटें हैं। द्विवेदी जी एक ऐसे चिन्तक हैं जो भारत के देवदारू और भारतीय परम्परा के 'अषोक के फूल' हैं जिनका कथन है कि स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती।

द्विवेदी जी षब्द षिल्पी ही नहीं षब्द षास्त्रीय भी है, सर्जक ही नहीं पण्डित भी हैं। यही दोनों गुण धर्म एक ओर उनके निबन्धों को नीरस और बोझिल होने से बचाते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषा षैली में सम्मोहन षक्ति भरते हैं। षैली ही व्यक्तित्व है यह एक आधुनिक मान्यता है, जिसका परिणाम यह है कि व्यक्तित्व और व्यक्तिगत निबन्ध की चरम सिद्धि–षैली के सौन्दर्य में ही निहित षैलीगत प्रभावों के अन्वेषण होने लगे। इस प्रकार साधन में उन्हें साध्य का भ्रम होने लगा। परिणामतः षैली व्यक्तित्व का दर्पण न होकर व्यक्तित्व का आवरण बन जाती है। द्विवेदी जी की निबन्धकीय कला में ये दोनों अतियाँ नहीं हैं। भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग में जहाँ भाव के अनूठापन जिसके अन्तर्गत प्रखर ज्ञान चेतना और उदार मानवीय दृष्टिकोण के साथ–साथ भाषा के अनूठेपन की बातें कही गयी है– वहाँ आ. द्विवेदी के निबन्धों में अतीत युग की कई मनोभूमियों का आत्मीयकरण और सर्वथा मौलिक अनन्य प्रतिभा का निर्माण संस्कार है। इसीलिए द्विवेदी जी की प्रतिभा में भारतीय वांग्मय की प्राचीन और मध्ययुगीन रत्न राषियों का आलोक समाया हुआ है।

द्विवेदी जी के निबन्ध एक ऐसी समृद्धि और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के माध्यम से मानव को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करते हैं जिनमें उनका सत्य सबका मानुस सत्य है। द्विवेदी जी ने इसी काल निरपेक्ष मानवीय सत्य को निरावरण करने का महत्त्वाकांक्षी और अनुसंधित्सु प्रयास किया है। द्विवेदी जी का पाण्डित्य जन–जन की सहानुभूति और रुचि के निकट है, क्योंकि उनकी पाण्डित्य की जड़ें लोकसंस्कृति के मूल तक धँसी हैं। यह लोक तत्त्व ही उनके निबन्धों की आधारषिला है। 'अषोक के फूल', 'आम के बौर', 'देवदारू' आदि निबन्धों में द्विवेदी जी षास्त्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म लोकों में बिहार करते हुए अपने मन की डोर को निरन्तर मानुस के सत्य से बाँधे हुए हैं। इसीलिए षास्त्रज्ञ होने पर भी वे लोकदृष्टि से ही षास्त्र का मूल्यांकन करते हैं। उनका पाण्डित्य बराबर उनकी षोधवृत्ति को उकसाता है और वस्तु के प्रस्तुत सौन्दर्य में लीन उनके मन को खींचकर परम्परा का अनुसंधान करने और उसके मूल तक पहुँचने को प्रेरित करता है। 'कुटज', 'देवदारू' 'षिरीष के फूल', 'अषोक के फूल', 'आम के बौर' उनकी विद्वत्ता के सप्राण, सवाक्य हैं और मनुश्य की जययात्रा के जीवन्त आलेख। द्विवेदी जी के पाण्डित्य में प्रज्ञा का वह सहज तेज है जो उनकी विधायक कल्पना को या यों कहें कि उनकी विधायक कल्पना के लिए नये क्षितिज और नये आकाष को उन्मुख कर देता है। द्विवेदी जी एक विलक्षण, अन्तर्दृष्टि सम्पन्न और व्यक्तिव्यंजक ललित निबन्धकार हैं जिनमें अनुसन्धान ही अनुसन्धान है।

''द्विवेदी जी निबन्ध को 'व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज' मानते हैं। इसीलिए वे निबन्ध के तर्कमूल रूप की अपेक्षा व्यक्तिगत निबन्ध को अधिक उपयुक्त कहते हें। निबन्धों के व्यक्तिगत होने का अर्थ यह नहीं है कि उनमें विचार श्रृंखला न हो ऐसा होने से वे प्रलाप कहे जायेंगे।''1

द्विवेदी जी के कुछ निबन्धों में बहुत ही मनोरम, मधुरतम और रमणीयतम उनके व्यक्तित्व की भंगिमा और मन के उच्छ्वास की भीतरी जो आर्द्रता व्यक्त हुई है। इस प्रकार के निबन्ध है– 'अषोक के फूल', 'बसंत आ गया है', 'मेरी जन्मभूमि', 'एक कुत्ता और एक मैना', 'नया वर्ष', 'जबकि दिमाग खाली है', 'वर्षा घनपति से घनष्याम तक', 'कुटज', 'साहित्य में हिमालय की परम्परा', 'जीवेम ष्षरदः षतम्', 'देवदारू', 'आत्मवहन का संदेषवाहक बसंत', 'दीपावली', 'सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिमा पर्व' आदि निबन्धों में विशय से अधिक मोहक वह षैलीगत लालित्य है। द्विवेदीजी स्वीकार करते हैं– ऋतुओं, पुष्पों, पादपों, पर्वों और स्थानों के पीछे हजारों वर्षों का मानव इतिहास छिपा हुआ है जिनकी चर्चा कभी आर्द्रचित्त होकर, कभी उदास होकर और कभी विह्वल मन से, कभी क्षोभ के साथ अतीत में, इतिहास में खण्डहरों में लेकर पाठक के साथ वे रखने लगते हैं और पाठक कहीं भी न तो उनके पाण्डित्य के आतंक से भयभीत होता है और न कहीं उनके षास्त्रीय ज्ञान से पराजित। बल्कि उनकी
व्याख्याओं और कल्पना की रंगीनियों से तुष्ट होता हुआ अद्भुत आनन्द का अनुभव करता है। द्विवेदी जी इतिहास से प्रेरणा लेते हैं और कहते हैं, ''मनुष्य थका है पर रुका नहीं है, वह बढ़त जा रहा है, इतिहास के अवषेष उसकी विजययात्रा के पद चिह्न हैं।''2

द्विवेदी जी का लोक जीवन के प्रति प्रेम, इतिहास प्रेम, प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य प्रेम अनेक रूपों में इनके निबन्धों में अभिव्यक्त हुआ है। ये लोक दृष्टि से ही ष्षास्त्रगत सत्य का मूल्यांकन करते हैं। उदाहरणार्थ 'आम फिर बौरा गए'

निबन्ध के अन्तर्गत द्विवेदी जी कहते हैं– ''बसंत पंचमी से पहले आम्र मंजरी दिखाई पड़ने पर उसे हथेली पर रगड़ने से वह हथेली साल भर तक बिच्छू के डंग को आसानी से उतार सकती है। द्विवेदी जी ने इसी लोकोक्ति के सत्य को षास्त्रों/पुराणों और प्राचीन इतिहास से जोड़ा है। इस प्रकार लोकोक्तियों के माध्यम से इन्होंने केवल अर्थ–दीप्ति, उक्ति–चमत्कार और लाक्षणिकता का ही समावेष नहीं किया है, कुछ सिद्धान्त की भी बातें कहीं हैं। जैसे–स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होतीं।''3 ''लक्ष्य भ्रष्ट जीवन केवल दयनीय ही नहीं होता वह समाज के लिए हानिकारक होता है। बड़ी वस्तु का दान भी बड़ा होता है।''4 इनके निबन्धों में बुद्धि और भाव का मणिकांचन योग है। इनकी बुद्धि इतनी प्रखर है, जब ये किसी षब्द का विचार करने लगते हैं तब उसके मूल में पहुँच जाते हैं। इसके लिए दो उदाहरण प्रस्तुत हैं– ''कुटज और आम्र। कुटज के फूल की चर्चा करते हुए एक कुटज षब्द पर विचार करने लगते हैं। कुटज का अर्थ है जो घड़े से पैदा हुआ है। कूट घड़े को भी कहते हैं और घर को भी। कूट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त मुनि भी कुटज कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे कोई और बात हुई होगी। संस्कृत में कुटहारिका और कुटकारिका दासी को कहते हैं, क्यों कहते हैं कुटिया या कुट षब्द भी कदाचित् इस षब्द से सम्बद्ध है। इतना ही नहीं इस कुट षब्द को वे संस्कृत के कुट षब्द से भी जोड़ते हैं और ष्षंकर से भी सम्बन्ध जोड़ते हैं। दृष्टि कूट छनद से भी जोड़ते हैं।''5 जब वे आम्र षब्द पर विचार करते हैं, तब कहते हैं– ''आम्र षब्द अम्र या आम्र षब्द का रूपन्तर है, अम्र अर्थात् खट्टा। आम षुरू–षुरू में अपनी खटाई के लिए प्रसिद्ध था।''6 द्विवेदी जी ने भारतीय संस्कृति के मलिन पक्ष की हमेषा आलोचना की है। वे परम्परा के पोषक इसी कारण हैं और उनकी दृष्टि प्राचीनता की ओर इस कारण से लगी हुई है कि मंगलकारी प्राचीन ही आधुनिक को मंगलमय रूप प्रदान करता है।

द्विवेदी जी त्याग, तप, संयम, अहिंसा को स्वीकारते हुए 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' नामक निबन्ध में लिखते हैं– ''आहार निद्रा आदि पषु–सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही है, जैसे अन्य प्राणियों के, लेकिन वह फिर भी पषु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख–दुख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है।''7 नियति पर उन्हें विष्वास है और कर्म में उनकी आस्था है। इसीलिए 'कुटज' में वे कहते हैं– ''पाताल भेदकर, पीड़ की छाती को फाड़कर, आकाष को चूमकर और वायुमण्डल से रस खींचकर मस्त और प्रफुल्लित रहने वाला 'कुटज' जो समझौता न करने वाला दृढ़ आस्था का वृक्ष है वह उन्हें बहुत आकर्षित करता है। इसी प्रकार देवदारू के प्रति वे श्रद्धा से अभिभूत है जो आग की लपटों से झुलसने के बावजूद ग्रीष्म की गर्मी में हँसता रहता है, उन्हें बहुत प्रिय है। द्विवेदी जी की आस्था है कि सब कुछ इतिहास विधाता की योजना के अनुसार चलता है, इसीलिए वे कुटज में कहते हैं– ''जो समझता है कि वह दूसरों पर उपकार कर रहा है, वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका उपकार कर रहे हैं, वह भी बुद्धिहीन हैं। कौन किसका उपकार करता है, कौन किसका अपकार कर रहा है। मनुश्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं इतिहास विधाता की योजना के अनुसार।''8

सन्दर्भ–

1- साहित्य सहचर, पृ. 137–138
2- आचार्य, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कुटज, पृ. 80
3- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग–9, पृ. 2
4- वही, पृ. 62
5- वही, पृ. 31
6- वही, पृ. 43
7- वही, पृ. 109
8- वही, पृ. 34